Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

कालिदास के काव्यों में शैक्षिक-चेतना

डॉ० रजनीश कुमार पाठक
प्रवक्ता (संस्कृत)
किशोरी रमण इण्टर कॉलेज,
मथुरा (उत्तर प्रदेश), भारत

सारांश – महाकवि कालिदास की शैक्षिक-चेतना भारतीय ज्ञान-दर्शन से अनुप्राणित है। उनकी दृष्टि में शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। वे शिक्षा को प्रकाश का स्रोत मानते हैं; जिससे व्यक्ति अपने जीवन के सूक्ष्मतम कार्यों के सम्पादन में सक्षम हो पाता है। शिक्षा प्राप्ति में 'अभ्यास' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरु और शिष्य का मधुर सम्बन्ध सीखने और सिखाने की क्रिया (शिक्षा) का आधार होता है।

प्रमुख शब्द – आन्वीक्षिकी, शिक्षा, आश्रम, धर्मशास्त्र, अध्यापक, परीक्षक, प्रबोध, विनय, संस्कृति, आचरण।

शिक्षा संस्कृति की संरक्षिका और संवाहिका होती है। शिक्षा ने ही वैदिक कालीन संस्कृति को अद्यावधि सुरक्षित रखा है। वैदिक युग से ही शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना गया है; जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा निर्देश देता है। कालिदास की शैक्षिक चेतना वेद, शास्त्र, रामायण और महाभारत आदि से अनुप्राणित है। उनकी दृष्टि में शिक्षा का प्रकाश व्यक्ति के सभी संशयों का उन्मूलन और उनकी सभी बाधाओं का निराकरण करता है- **"चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्म कार्यार्थदर्शिना** (रघुवंश 4.13)।" विविध ग्रन्थों से प्राप्त कालिदास की शैक्षिक चेतना का यहाँ आकलन किया जा रहा है –

I. **अध्ययन का विषय** -कालिदास अध्ययन के विषयों का निर्देश 'विद्या' शब्द से करते हैं, जिसका प्रयोग प्राय: बहुवचन में है। विद्याओं की संख्या के विषय में वे कहीं तीन (रघुवंश-18/50), कहीं चार (रघुवंश-3/30) और कहीं चतुर्दश (रघुवंश-5/21) विद्याओं का उल्लेख करते हैं। इस सन्दर्भ में कवि कई आचार्यों के मत से अनुप्राणित प्रतीत होते हैं। तीन विद्याओं की स्थिति में त्रयी, वार्ता और दण्डनीति का भाव लेते हैं क्योंकि ये क्रमश: धर्म, अर्थ और काम की सहायक विद्याएँ हैं। मनु के अनुयायी आन्वीक्षिकी को त्रयी में गतार्थ करके तीन ही विद्याओं को स्वीकार करते हैं। कालिदास के टीकाकार इस प्रसङ्ग में मनु का दृष्टान्त देकर त्रयी, वार्ता और दण्डनीति को ही तीन विद्याएँ मानते हैं। राजा सुदर्शन के द्वारा अधिगत इन तीन विद्याओं के विषय में स्वयं कवि का कथन है.

तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्या: प्रकृतीश्च पित्र्या:। (1)

यहाँ तीन विद्याओं को त्रिवर्ग का मूल कहा गया है, अत: परम्परागत भाव से हटकर धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र के रूप में यदि इन विद्याओं का ग्रहण किया जाय तो अधिक औचित्य हो, ऐसा कुछ आलोचक मानते हैं।

कालिदास द्वारा उल्लिखित चार विद्याओं की व्याख्या में टीकाकारों ने कौटिल्य का प्रमाण दिया है। 'अर्थशास्त्र' (1/2) में बतलाई गई चार विद्याएँ हैं आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या:'। कामन्दकीय नीतिसार में इनका उल्लेख इस प्रकार है

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती।

विद्याश्चतस्त्र एवैता योगक्षेमाय देहिनाम्।। (2)

तदनुसार इनसे सभी प्राणियों का योगक्षेम (जीविका) चलता है। इस प्रसङ्ग में कौटिल्य तथा कामन्दक दोनों अपने पूर्वाचार्यों का मत प्रकट करते हुए बताते हैं कि आन्वीक्षिकी को त्रयी में गतार्थ करके मनु के अनुयायी तीन ही विद्याओं को स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर बृहस्पति के अनुयायी (**बार्हस्पत्याः चार्वाकाः**) त्रयी को हटाकर अर्थ-साधन करनेवाली वार्ता और दण्डनीति को ही विद्याओं में गिनते हैं जबकि औशनस (शुक्राचार्य) मत में एक ही विद्या दण्डनीति है, जिसपर सभी विद्याएँ आश्रित हैं। (3) किन्तु कौटिल्य दृढ़तापूर्वक चार विद्याओं का समर्थन करते हुए प्रत्येक का स्वतन्त्र उपयोग सिद्ध करते हैं। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है क्योंकि कालिदास भी इससे सहमत हैं।

(i) **आन्वीक्षिकी**-तर्कशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र को आन्वीक्षिकी कहते हैं। स्वयं कौटिल्य ने सांख्य, योग और लोकायत को आन्वीक्षिकी की परिधि में रखा है। अपने तर्क के द्वारा यह विद्या अन्य सभी विद्याओं का उपकार करती है। जैसे-त्रयी का अपना विषय धर्म और अधर्म का प्रतिपादन है किन्तु त्रयी स्वयं यह सिद्ध नहीं कर सकती कि कोई क्रिया धर्म क्यों है और अधर्म क्यों है? इसी प्रकार वार्ता की विषयवस्तु है - अर्थ (उचितधन) और अनर्थ (अनुचित धन) का प्रतिपादन करना। किन्तु उसमें यह क्षमता नहीं कि अर्थ के अन्तर्गत निरूपित विषयों का औचित्य सिद्ध करे। दण्डनीति भी नय और अनय (न्याय और अन्याय) का प्रतिपादन तो करती है किन्तु उनके औचित्य की रक्षा उसकी शक्ति के बाहर है। ऐसी स्थिति में आन्वीक्षिकी इन विद्याओं की रक्षा करती है। हेतु और तर्क द्वारा पूर्वपक्षियों के प्रहार से वही बचाती है। (4) इससे इन विद्याओं का नहीं अपितु इनके द्वारा उपकृत होनेवाले व्यक्तियों का ही उपकार होता है।

(ii) **त्रयी**- कौटिल्य इसके अन्तर्गत साम, ऋक् और यजुर्वेद की गणना करते हैं। पुनः अथर्व और इतिहास वेद (महाभारत) को भी वेद का पर्याय समझते हैं। वेद के छह अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) भी त्रयी के अन्तर्गत आते हैं। यह विद्या वर्णों और आश्रमों को अपने-अपने धर्म पर स्थापित करके संसार का उपकार करती है। राजा की शिक्षा का यह अङ्ग हैं क्योंकि राजा को धर्म की व्यवस्था वेदों के अनुसार करनी होती है।

(iii) **वार्ता**- कृषि, पशुपालन और वाणिज्य-इन तीनों को वार्ता कहते हैं (अर्थशास्त्र-1/4)। यही विद्या धन-धान्य, पशु, सुवर्ण आदि देकर अर्थ-व्यवस्था करती है। महाभारत में अर्थकरी विद्या की बड़ी प्रशंसा की गई है। वस्तुतः वार्ता अर्थकरी विद्या है। इस विद्या से उत्पन्न कोष और दण्ड द्वारा कोई राजा स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को वश में कर लेता है।

(iv) **दण्डनीति**- इसे राजशास्त्र (राज्य सञ्चालन की विद्या) या अर्थशास्त्र भी कहा जाता था। उपर्युक्त तीनों विद्याओं का सञ्चालन दण्ड ही कर सकता है, दण्ड की नीति ही दण्डनीति है। इसकी प्रशंसा करते हुए कौटिल्य कहते हैं कि यह अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा सकती है, प्राप्त वस्तु की रक्षा करती है, रक्षित वस्तु को बढ़ाती है और बढ़ी हुई वस्तु का उपयोग उचित पात्र में कराती है। (5) लोकयात्रा या सामाजिक व्यवहार दण्डनीति पर आश्रित होती है।

कालिदास रघुवंश में एक स्थान पर विद्याओं की संख्या चतुर्दश बतलाते हैं।
ऋषि वरतन्तु के शिष्य कौत्स को आदेश मिलता है कि यदि तुम दक्षिणा देने के लिए दुराग्रह पर उतर आए हो तो मुझसे प्राप्त चौदह विद्याओं के अनुसार मुझे चौदह करोड़ मुद्राएँ लाकर दो -

निर्बन्धसञ्जातरुषाऽर्थ कार्यमचिन्तयित्वा गुरुणाऽहमुक्त:।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति।। (रघुवंश-5/21)

इन चौदह विद्याओं का उल्लेख याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति इस प्रकार किया है - चार वेद, छह वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय (न्यायशास्त्र, आन्वीक्षिकी), पुराण तथा धर्मशास्त्र। [6]
कालिदास ने इन विद्याओं के अनुशीलन का सङ्केत अपने काव्यों में अनेक स्थलों पर दिया है।" **श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्"** (रघुवंश-2/2), **"वेदविदां वरेण्यं"** (रघुवंश -5/23)," **साङ्गं च वेदमध्याप्य"** (रघुवंश-15/33) - ये संकेत वेदों और वेदाङ्गों के सूचक हैं। कालिदास के समय में वेद-वेदाङ्गों के अतिरिक्त 'उपवेद' भी विकसित हो गए थे। उपवेद के अन्तर्गत धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि शास्त्र आते हैं। विक्रमोर्वशीय में' तापसी राजकुमार आयु की शिक्षा के विषय में कहती है -**"गृहीतविद्यो धनुर्वेदेऽभिविनीत:**"(विक्रमोर्वशीय 5/10 के बाद)। मीमांसा दर्शन के कर्मकाण्ड का विवेचन विभिन्न यज्ञों के वर्णन में कवि ने किया है। सांख्य [7], योग [8] आदि दर्शनों का विवेचन भी विभिन्न प्रकरणों में किया गया है, जो 'न्याय' की परिधि में आते हैं। पुराणों [9] में देवताओं और राजाओं की वंशावली थी, जिनका उल्लेख कवि "पुराविद:" कहकर करते हैं। उल्लेखनीय है कि कालिदास पुराण और इतिहास का उल्लेख पृथक् शास्त्रों के रूप में करते हैं। उनकी दृष्टि में रामायण तथा महाभारत इतिहास हैं। वे वाल्मीकि का निर्देश पूर्वसूरि के रूप में करते हैं, जिन्होंने रघुवंश के कथानक का आधार निर्मित किया (रघुवंश-1/4)। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला की दशा के विषय में अनसूया कहती है -**"यादृशीतिहास निबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशी ते पश्यामि।"**
कालिदास धर्मशास्त्र का उल्लेख 'स्मृति' के रूप में करते हैं।

अध्ययन के उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त हमें ललितकला एवं चित्रकला की भी सूचना कालिदास के ग्रन्थों से शिक्षा के विषय के रूप में मिलती है। सङ्गीत, नृत्य और अभिनय ललितकलाओं में मुख्य थे। रघुवंश में राजा अज अपनी भार्या को ललितकलाओं की शिक्षा में अपनी प्रिय शिष्या कहते हैं (**प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ** (रघुवंश-8/67)रघुवंशी कामुक राजा अग्निवर्ण अपनी प्रेमिकाओं को आङ्गिक, सात्त्विक और वाचिक तीनों प्रकारों का नृत्य करना स्वयं दिखलाकर शिक्षा देता था और प्रयोग में निपुण नृत्य-शिक्षकों के साथ अपनी मित्र-मण्डली के समक्ष ही प्रतिस्पर्धा करता था(रघुवंश-19/36)। मालविकाग्निमित्र के प्रथम दो अङ्कों में वर्णन है कि राजा अग्निमित्र ललितकलाओं की शिक्षा के लिए एक शिक्षालय का सञ्चालन करते थे, जिसमें संगीत, नृत्य, नाट्य तथा चित्रकला की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रसङ्ग में चित्रशाला और संगीतशाला का पृथक्-पृथक् उल्लेख है।

कालिदास के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि उनके समय तक अध्ययन के विविध विषयों का विकास हो चुका था। लोग अपनी-अपनी रुचि तथा आवश्यकता के अनुसार अध्ययन में प्रवेश करते थे। जहाँ तक राजा की शिक्षा का प्रश्न है, कालिदास उनके द्वारा अधीत चार विद्याओं (**चतस्र: विद्या: ततार**-रघुवंश-3/30) का उल्लेख करते हैं, जिसे टीकाकारों ने कौटिल्य के सम्मत आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति-के रूप में समझाया है। कालिदास एक रघुवंशी राजा सुदर्शन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पट्टिका पर लिखित वर्णमाला की शिक्षा भी उसने नहीं ली थी कि विद्यावृद्ध लोगों के सम्पर्क से समस्त दण्डनीति के फलों का अनुभव उसने कर लिया।(रघुवंश-18/46)इसमें अस्पष्ट संकेत हैं कि कुछ राजा ऐसे भी होते होंगे जो लिखना-पढ़ना नहीं जातने हुए भी दण्डनीति अर्थात् राजशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों में कुशल रहते होंगें। वस्तुत: दण्डनीति का उपयोग राजा के कार्यों में ही होता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि दण्डनीति का अनुशीलन सामान्य शिक्षा में नहीं रहा होगा जबकि शेष विद्याएँ-आन्वीक्षिकी, त्रयी एवं वार्ता-सामान्य शिक्षा के विषय रहे होंगे।

जहाँ तक चतुर्दश-विद्या का सवाल है, कालिदास ने इसका वर्णन वरतन्तु-शिष्य कौत्स के प्रसङ्ग में किया है, जो ब्राह्मण वर्ण के शिष्य थे। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण वर्ण के शिष्यों को उक्त चौदह प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करना पड़ता था। ललितकला एवं चित्रकला आदि की शिक्षा विशेष रूप से स्त्रियों की शिक्षा का अङ्ग था। इन विषयों की शिक्षा सामान्य स्त्रियाँ भी पती थीं, किन्तु

वेश्याओं की तो जीविका ही इनसे चलती थी। [10] वैसे राजा अज एवं कामुक राजा अग्निवर्ण की भी ललितकाओं में प्रवीणता की सूचना कालिदास देते हैं।

II. **शिक्षा-केन्द्र** -प्राचीनकाल में गुरुकुल शिक्षा-पद्धति थी, जिसमें शिष्य नियत अवधि तक आश्रम में गुरु के समीप रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करते थे। कालिदास के वर्णन से प्रतीत होता है कि उस समय तक यह व्यवस्था प्रचलित थी। तपोवन में ऋषियों के आश्रम ही शिक्षा के मुख्य केन्द्र हुआ करते थे, जो नगरों से दूर नदी-तट पर अवस्थित होते थे। अभिज्ञानशाकुन्तल में कण्व का आश्रम, रघुवंश में वशिष्ठाश्रम और विक्रमोर्वशीय में च्यवन ऋषि का आश्रम शिक्षा केन्द्र के रूप में वर्णित हैं।

इसके अतिरिक्त, सम्पन्न लोग घरों में ही शिक्षक रखकर अपने बालक-बालिकाओं को विविध विद्याओं और कलाओं की शिक्षा देते थे। वस्तुत: महाभारत काल में ही गृह-शिक्षक रखने की प्रथा चल पड़ी थी। रघु एवं पार्वती को घर पर ही विविध विषयों के योग्य शिक्षक रखकर शिक्षा दिलाए जाने का वर्णन कवि ने किया है। मालविका तथा इरावती को नृत्य-गायन आदि की शिक्षा दने के लिए राजमहल में नाट्याचार्य नियुक्त किए गए थे। कहीं-कहीं पिता पुत्र को कुछ विषयों की शिक्षा दिया करता था। रघु ने अपने पिता दिलीप से धनुर्विद्या प्राप्त की थी। इन्दुमती अपने पति अज की ललितकालाएँ सीखनेवाली प्रिय शिष्या थी **(प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ)** (रघुवंश-8/67)

III. **आश्रम का जीवन** - यद्यपि कालिदास वर्णपरिचय या अक्षरारम्भ को शिक्षा में सर्वप्रथम स्थान देते हैं क्योंकि रघु [11] एवं सुदर्शन [12] के वर्णमाला लेखन का वर्णन उन्होंने किया है तथापि शिक्षा का विधिवत् आरम्भ उपनयन संस्कार से ही होता था, जब एक निश्चित शिक्षक के निर्देशन में शास्त्राध्ययन प्रारम्भ होता था। विभिन्न वर्णों के बालकों को अपनी रुचि तथा आवश्यकता के अनुसार शास्त्रों और कलाओं को पढ़ने एवं सीखने में पृथक्-पृथक् कालावधि लगती थी। ब्राह्मण वर्ण का कौत्स आश्रम में रहकर चौदह विद्याओं को ग्रहण किया था ऐसा वर्णन रघुवंश के पञ्चम सर्ग में है।

किसी आश्रम में अनेक गुरु रहते थे, जो विविध विषयों का अध्यापन करते थे। शिक्षा संस्थानों के प्रधान 'कुलपति' कहलाते थे। अभिज्ञानशाकुन्तल में कण्व, रघुवंश में वशिष्ठ एवं विक्रमोर्वशीय में च्यवन ऋषि अपने-अपने आश्रमों के कुलपति थे। इससे प्रतीत होता है कि समस्त शिक्षा-व्यवस्था में घर का वातावरण मिलता था। कुलपति शब्द से उनका अपने कुल के प्रति ममत्व बोधित होता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कालिदास ने 'गुरु' शब्द धार्मिक अनुष्ठानों के सन्दर्भ में और 'आचार्य' शब्द कला-शिक्षक के लिए प्रयोग किया है। साथ ही विक्रमोर्वशीय के तृतीय अङ्क के विष्कम्भक में नाट्यशास्त्र के शिक्षक को 'उपाध्याय' कहा गया है, जिन्होंने उर्वशी के नाट्याभिनय में भूल होने पर शाप दिया था कि अब तुम स्वर्ग में नहीं रह सकती **(सा खलु शप्ता उपाध्यायेन)।**

गुरु अथवा शिक्षक को अत्यन्त सम्मान दिया जाता था। चरण स्पर्श द्वारा उनका अभिवादन प्रशस्त था (**तयोर्जगृहतु: पादान् राजा राज्ञी च मागधी** - रघुवंश -1/57)। आचार्य को देवता के समान माना जाता था, जिससे उनके प्रति भक्ति भी की जाती थी **(गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्ति:**-रघुवंश - 2/40)। राजा अपने गुरु के पास संकट का समाधान पूछने के लिए आश्रम में जाते थे।
आश्रम का जीवन बहुत सरल तथा न्यूनतम आवश्यकता से पूर्ण होता था। पर्णशाला में निवास, वल्कल वस्त्र का परिधान, नीवार एवं कन्द-मूल-फल का भोजन, शयन के लिए मृगचर्म या दर्भ की शय्या-यही आश्रम का जीवन था। जलाने के लिए इंगुदी के तेल का दीपक होता था। इसी तेल को सिर में भी आश्रम-वासी लगाते थे तथा व्रण का विरोपण भी इसी से होता था।

कालिदास ने एक स्थान पर रात्रि के अन्तिम प्रहर में बुद्धि को निर्मलता (प्रसाद) प्राप्त करने का प्रयोग उपमान के रूप में किया है - **'पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना'।**(रघुवंश-17/1)इससे प्रतीत होता है कि आश्रम में उसी प्रहर में विद्यार्थी उठकर विद्याभ्यास करते होंगें। राजा दिलीप को रात्रि के अवसान का बोध वशिष्ठ के आश्रम में शिष्यों के अध्ययन की ध्वनि से ही हुआ था -

'तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानाम् (रघुवंश-1/95)

इस सन्दर्भ में कालिदास अध्ययन में अभ्यास के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। महर्षि वशिष्ठ द्वारा राजा दिलीप को गो-सेवा का उपदेश देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे अभ्यास से विद्या प्रसन्न होती है, उसीप्रकार तुम सदैव सेवा करके इस धेनु (नन्दिनी) को प्रसन्न करो - **विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि** (रघुवंश-1/88)

आश्रमों में सायंकाल एवं प्रात:काल अग्निपूजन और हवन होता था। शिष्य समिधा, कुश, फल आदि लाते थे। स्त्रियों तथा विद्यार्थिनियों को समीपस्थ नदियों तथा जलाशयों से गृहकृत्य के लिए तथा वृक्षों को सींचने के लिए जल लाना पड़ता था, जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अङ्क में वर्णन है। आश्रमों के शान्त वातावरण का प्रभाव पशु-पक्षियों पर भी पड़ता था। इसतरह विद्या का विनय रूपी फल सम्पूर्ण आश्रम में व्याप्त रहता था। जीव-हिंसा सर्वथा वर्जित थी। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त को एक मृग पर बाण चलाने में तत्पर देखकर शिष्य द्वारा उसे रोकने तथा विक्रमोर्वशीय में राजकुमार आयुष द्वारा संगमणीय मणि लेकर जानेवाले गीद्ध पर बाण चला देने से आश्रम के नियमविरुद्ध आचरण कहकर उसे उसके सम्बन्धियों के पास भेज देने के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि आश्रम में इस नियम का पालन कड़ाई से किया जाता था। आश्रमों से निकलकर नगर में जानेवाले शिष्यों को भीड़ देखकर ऐसा लगता था मानो किसी घर में आग लगी हो -

जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीत गृहमिद। अभिज्ञान॰-5/10

इसप्रकार, पवित्रता तथा वात्सल्य के वातावरण में आश्रमवासी शिष्यों की शिक्षा चलती रहती थी।

IV. **स्त्री-शिक्षा** -कालिदास के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि आश्रमों में बालिकाओं को भी शिक्षा दी जाती थी। अनसूया, प्रियंवदा और शकुन्तला आश्रम में ही बड़ी हुई और वहीं उन्होंने शिक्षा पाई थी। "यद्यपि बालक-बालिकाओं की एक ही शिक्षा होती थी या उनके अलग-अलग वर्ग थे - इसका कालिदास के ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता तथापि भवभूति के 'उत्तररामचरित' में आत्रेयी, लव और कुश का कुछ समय तक सह-शिक्षा दिखलाया गया है। इससे कालिदास के समय में भी वही पद्धति प्रचलित होगी-ऐसा प्रतीत होता है"।[(13)] अभिज्ञानशाकुन्तल से यह पता चलता है कि बालिकाओं को लिखना-पढ़ना, चित्राङ्कन, सङ्गीत, गृहकृत्य आदि की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रसङ्ग में कालिदास यह व्यवहार दिखलाते हैं कि जो स्त्रियाँ गृहस्थाश्रम में जाना चाहती हैं, उन्हें उद्यानकला की शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये। वृक्षों को ठीक समय पर जल देना तथा उनकी सम्यक् देखभाल करना अप्रकट रूप से उनमें सन्तान के प्रति स्नेह और वात्सल्य का विकास करता है। शकुन्तला पार्वती और सीता - इन सभी स्त्री पात्रों के सन्दर्भ में कवि ने यह बात कही है। सींचे गए पौधों के प्रति पार्वती का वात्सल्य कालान्तर में कार्तिकेय भी दूर नहीं कर सकेंगें -

गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति। (कुमारसम्भव-5/14)

कुछ स्त्रियाँ पुरुषों के समान अनेक विद्याओं का अध्ययन करती थीं। मालविकाग्निमित्र की परिव्राजिका विविध कलाओं में पारंगता विदुषी थी, जिन्होंने गणदास और हरदत्त के उक्त विवाद में प्राश्निक (परीक्षक) का पद ग्रहण किया था।

स्त्रियों को ललितकलाओं की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। संगीत, नृत्य और अभिनय ललितकलाओं में मुख्य थे। इन विषयों की शिक्षा सामान्य स्त्रियाँ भी पाती थीं किन्तु वेश्याओं की तो जीविका ही इनसे चलती थी। राजा अग्निमित्र ने इरावती एवं मालविका की नृत्य-शिक्षा के लिए राजप्रासाद में ही शिक्षालय की व्यवस्था की थी किन्तु इसमें जनसामान्य की स्त्रियों द्वारा शिक्षा ग्रहण का संकेत नहीं मिलता। कुछ शिष्याएँ कला आदि की शिक्षा में अत्यन्त निपुण होती थीं। गणदास ने मालविका को 'परमनिपुणा' और 'मेधाविनी' कहा था। मेधाविनी पार्वती को उसकी पूर्वजन्मवाली सारी विद्याएँ उपदेश के समय प्राप्त हो गई थीं -

स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्या:। (कुमारसम्भव-1/30)

इसप्रकार, कालिदास के काल में स्त्री-शिक्षा की स्थिति अच्छी थी। आश्रमों में भी स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था थी। ललितकलाओं की शिक्षा स्त्रियों के लिए अधिक उपयोगी माना जाता था। कुछ स्त्रियाँ विविध विषयों में भी परमनिपुणा और मेधाविनी हुआ करती थीं।

V. **अध्यापक का आदर्श** -कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में अध्यापक के आदर्श का निरूपण परिव्राजिका के मुख से कराया है। वह दो प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख करती है –

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।। (मालविकाग्निमित्रम्- 1/16)

तदनुसार, कुछ शिक्षकों के पास विद्या अपने आप में अवस्थित रहती है, इस प्रकार चिपकी रहती है कि दूसरे व्यक्तियों तक वे उस विद्या को सम्यक् अभिव्यक्ति आदि के अभाव में या अनिच्छा, आलस्य आदि के कारण सङ्क्रान्त नहीं करा पाते हैं। अपने आप में ये बड़े विद्वान गुणवान् होते हैं।

दूसरे, कुछ शिक्षकों में यह क्षमता होती है कि अपनी विद्या को विशेष संस्कार या विस्तार के साथ स्पष्ट करते हुए दूसरे लोगों तक सङ्क्रान्त कर पाते हैं, उन्हें भी विद्या का आनन्द दिला पाने में समर्थ होते हैं। कालिदास की मान्यता है कि जिस शिक्षक में ये दोनों गुण विद्यमान हों वही प्रतिष्ठा के योग्य होता है।

इसी प्रसङ्ग में आगे कवि उल्लेख करते हैं कि अध्यापक को कभी अपनी परीक्षा से डरना नहीं चाहिये। एकबार अध्यापक-पद पाकर जो व्यक्ति निश्चिन्त हो जाते हैं तथा विवाद या परीक्षा होने के भय से ज्ञान का तिरस्कार सहते हैं, वे शिक्षक कहलाने के योग्य नहीं हैं। वैसे लोगों का शास्त्रज्ञान केवल जीविका-लाभ के लिए है, तेजस्विता के प्रदर्शन के लिए नहीं। वे लोग ज्ञान की विक्री करनेवाले वणिक् हैं –

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।। (मालविकाग्निमित्रम्- 1/17)

इस पद्य के माध्यम से कालिदास अध्यापक के वास्तविक कर्तव्य का व्यवहार दिखलाना चाहते हैं कि अध्यापक को पद पाकर निश्चिन्त नहीं होना चाहिये और विवाद या परीक्षा से डरना नहीं चाहिये। स्पष्ट है कि विवाद से नहीं डरने के लिए उसे सतत् अध्ययनशील रहना चाहिये। वस्तुतः सच्चा अध्यापक वही होता है, जो अपने जीवन के अन्त तक विद्यार्थी बना रहता है ("**यावज्जीवमधीते विप्रः**")। इसतरह, शिक्षक ज्ञान का प्रकर्ष रखे तथा जीविका पाकर आत्मसम्मान को बेच न दे। ज्ञान और आत्मसम्मान परस्पर सम्बद्ध शब्द हैं। जीविका की रक्षा के लिए अपमान सहना शिक्षक का आदर्श नहीं है।

यह गणदास की उक्ति है, जो कालिदास की दृष्टि में आदर्श अध्यापक है। परिव्राजिका इसी शिक्षक के प्रति अन्त में अपना निर्णय देती है। परिव्राजिका द्वारा बताए गए अध्यापक की उपर्युक्त दो विशेषताओं के विषय में गणदास कहता है कि मुझे यह मानदण्ड स्वीकार है-

विवादे दर्शयिष्यामि क्रियासङ्क्रान्तिमात्मनः।

यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया।। (मालविकाग्निमित्रम्- 1/19)

विवाद होने पर मैं अपने शिष्यों के द्वारा दिखला दूंगा कि मेरी सङ्क्रान्ति क्षमता क्या है अर्थात् शिष्यों को विद्या मैंने किस प्रकार सिखलाई है। यदि आप मुझे इसकी अनुमति नहीं देतीं तो मैं यही समझूँगा कि आपने मुझे त्याग दिया है। यहाँ गणदास के रूप में कवि ने शिक्षक का स्वाभिमान और तेज प्रकट किया है जो किसी साधारण शिक्षक के द्वारा अपना अपमान नहीं सह पाता।

इस सन्दर्भ में कालिदास यह व्यवहार दिखलाते हैं कि अधम शिष्य के चयन से आचार्य की बुद्धि की लघुता व्यक्त होती है (**विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति**)। [(14)] इसीलिए कवि उत्तम शिष्य को दी गई शिक्षा की सर्वत्र प्रशंसा करते हैं। उनके अनुसार उत्तम पात्र में स्थापित किया गया शिल्प (विद्या, शास्त्र) आधान करने वाले शिक्षक के (आधातु:) विशिष्ट गुण को प्रकाशित करने में समर्थ होता है

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तर व्रजति शिल्पमाधातु:। (मालविकाग्निमित्रम्- 1/6)
इसीतरह अभिज्ञानशाकुन्तल में कवि कहते हैं कि सुशिष्य को दी हुई विद्या के समान शकुन्तला, तूं दुष्यन्त को सौंपने से असोचनीया हुई -

"सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽसि संवृत्ता"। [(15)]

इसप्रकार, आदर्श शिक्षक को सदैव सच्छिष्य में विद्या का आधान करना चाहिये। उसे विवाद से डरना नहीं चाहिये अपितु सतत अध्ययनशील बना रहना चाहिये। शिक्षक को विषय-वस्तु का ज्ञान तो होना ही चाहिये, उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति-क्षमता भी होनी चाहिये।

V. **परीक्षा एवं परीक्षक-** मालविकाग्निमित्र में वर्णित शिक्षा विषयक उक्त प्रसङ्ग से यह ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की परीक्षाओं का प्रचलन था। चित्रलेखन, नृत्य, गीत इत्यादि प्रयोग-प्रधान विद्याओं की परीक्षा विशेष रूप से व्यावहारिक ही होती थी। व्यावहारिक परीक्षा में छल-प्रपञ्च का अवकाश कम रहता है। अतएव प्रयोगप्रधान विद्याओं की केवल पुस्तकीय शिक्षा पूर्ण न मानकर प्रत्यक्ष प्रयोग देखकर ही परीक्षाकों को विद्यार्थी की योग्यता का निर्णय करना चाहिये। इस सन्दर्भ में कवि का निर्देश है कि एह ही परीक्षक के मत पर परीक्षा का परिणाम निर्धारित रखने से विद्यार्थी के प्रति अन्याय हो सकता है। परिव्राजिका कहती है कि सर्वज्ञ व्यक्ति भी यदि अकेले निर्णय करना चाहता है तो उससे भूल हो सकती है (**सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमोदोषाय**)। [(16)]

कवि की इस उक्ति से व्यावहारिक परीक्षा का महत्त्व प्रकट होता है, क्योंकि इसे देखनेवाले अनेक होते हैं। अत: यदि कभी परीक्षक अन्याय करते हैं तो वह भी जनाक्रोश सहते हैं। साधारणत: व्यावहारिक परीक्षा में परीक्षक भी बहुत सतर्क होकर अपना निर्णय देते हैं। इसी प्रसङ्ग में कालिदास परीक्षक की निष्पक्षता का व्यवहार दिखलाते हैं। राजा अग्निमित्र जब हरदत्त और गणदास की पारस्परिक श्रेष्ठता के विषय में परीक्षा लेकर निर्णय करने का भार परिव्राजिका पर छोड़ते हैं तब वह कहती है कि नगर के रहते हुए ग्राम में रत्न की परीक्षा उचित नहीं है (**पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा**)। [(17)] भाव यह है कि जब राजा और रानी परीक्षा ले सकते हैं तब मेरी क्या आवश्यकता है? मुझे क्यों परीक्षक बनाया जा रहा है? इसपर राजा उत्तर देते हैं कि आप पण्डिता कौशिकी हैं, दोनों आचार्यों में से किसी के पक्ष की नहीं हैं। हम और रानी दोनों एक-न-एक आचार्य के पक्षधर हैं (**पक्षपातिनावहं देवी च**)। हरदत्त की नियुक्ति छोटी रानी को अभिनय सिखाने के लिए राजा ने की है, अत: वे उसके पक्षपाती कहे जा सकते हैं। रानी धारिणी ने गणदास की नियुक्ति मालविका की अभिनय-शिक्षा के लिए की है, अत: वे उसकी पक्षधर मानी जा सकती हैं। इसलिए कला-शिल्प या विद्या के विवाद में परीक्षक का काम वही करे, जो वादी-प्रतिवादी से किसी प्रकार सम्बद्ध न हो।

VI. **शिक्षा के उद्देश्य** -प्राचीनकाल से ही विद्वज्जन शिक्षा के भिन्न-भिन्न उद्देश्य बतलाते आए हैं। कालिदास एक साधारण उपमान के द्वारा शिक्षा के दो उद्देश्य बताते हैं। रघुवंश में कवि कहते हैं कि सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो पुत्रों को उसी प्रकार जन्म दिया, जिस प्रकार सम्यक् रूप से अभ्यास करने पर विद्या, प्रबोध तथा विनय-इन दो प्रयोजनों को जन्म देती है-

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ।

सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयाविव।। (रघुवंश-10/71)

प्रबोध का अर्थ है-ज्ञान। विनय समस्त आचरण, शील और अनुशासन का भाव रखता है। ये दोनों युग्म हैं, सदा साथ रहते हैं। एक की दूसरे के अभाव में कल्पना ही नहीं होगी।

इसप्रकार, शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति ज्ञानी बनता है। कोई ज्ञानी विनीत या आचरण सम्पन्न नहीं हो तो शिक्षा अपूर्ण ही कही जा सकती है। अत: कालिदास ज्ञान और आचरण दोनों को विद्या का संयुक्त फल मानते हैं। केवल ज्ञान से मानव शिक्षित नहीं कहला सकता, उसमें शील भी होना चाहिये। ज्ञान से सुख-साधनों की प्राप्ति होती है, शील से त्याग, सहिष्णुता, उदारता, इन्द्रियनिग्रह इत्यादि गुण प्रकट होते हैं, जिससे समाज की व्यवस्था होती है। विद्या से प्राप्त विनय का महत्त्व अन्यत्र भी दिखलाया गया है -

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मः ततः सुखम् ॥

निष्कर्ष :- कालिदास के अनुसार शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है; जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा निर्देश देता है। आदर्श शिष्य को आचरणशील एवं कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। उसे स्वाध्याय से प्रमाद नहीं करना चाहिए और अभ्यास पर बल देना चाहिए। परीक्षा का स्वरूप सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों प्रकार का होना चाहिए। कालिदास की शैक्षिक चेतना सार्वत्रिक और सर्वकालिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थः -

1. रघुवंश 18/50
2. कामन्दकीय नीतिसार-2/2
3. कौटिल्य-अर्थशास्त्र- 1/2 तथा कामन्दकीय नीतिसार-2/5- तस्यां तु सर्वविद्यानामारम्भाः समुदादृताः।
4. कौटिल्य-अर्थशास्त्र -1/2- बलाबलं चेतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लेकस्योपकरति।
5. अर्थशास्त्र-1/4, - अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षिणी, रक्षितविवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषुप्रतिपादनी च।
6. याज्ञवल्क्य स्मृति-1/3 पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानांधर्मस्य च चतुर्दश।।
7. रघुवंश 13/60 'बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति', जैसे अव्यक्त अर्थात् प्रकृति से बुद्धि उत्पन्न हुई।
8. रघुवंश 8/24 'पुरुषं योग समाधिना रघुः'।
9. रघुवंश 11/10 पूर्ववृत्त कथितैः पुराविदः, तत्रैव - 18/23-पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः।
10. तत्रैव- 3/19- प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्
11. तत्रैव- 3/28 'लिपेर्यथावद्ग्रहणेन'।
12. तत्रैव- 18/46 'न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायाम्।
13. प्रो. वी.वी. मिराशी, कालिदास, पृ. 251
14. मालविकाग्निमित्र 1/16 के बाद
15. अभिज्ञानशाकुन्तल - 4/4 से पूर्व।
16. मालविकाग्निमित्र 1/18 से पूर्व
17. तत्रैव - 1/15 के बाद